



THE TIMES OF INDIA

Date: 17-09-18

## Unfinished Story

### *India's HDI ranking shows success in poverty reduction but failure on equality*

#### TOI Editorials

India's ranking in UN's Human Development Index (HDI) went up by just one from last year, to 130th. But the country has made appreciable strides on its HDI value since 1990. India's HDI value was only 0.43 in 1990. In 2017, this grew to 0.64 – an increase of around 50%. Consider that India's life expectancy in 1990 was 57.9 years. In 2017, it went up to 68.8 years. Over the same period, India's per capita income in PPP terms saw an increase of a whopping 267% from \$1,733 to \$6,353. Similarly, expected years of schooling went up from 7.6 years to 12.3 years.

All of which isn't surprising given that it was in 1991 that India initiated economic liberalisation. The HDI improvement over this period essentially captures the benefits that accrued to Indian society from that historic decision. That India's HDI value is higher than the South Asian average of 0.638 exemplifies this point. Yet, the very fact that India went up just one spot from its 2016 HDI ranking shows that improvement has been part of a larger global trend where other countries too have made considerable achievements in bettering their citizens' lives.

Plus, development hasn't been spread evenly, with India's income inequality the highest at 18.8% – compared to 15.7% for Bangladesh and 11.6% for Pakistan. In fact, when corrected for inequality India's HDI value falls by 26.8% to 0.468. This means that most of the improvements have flowed to the top of the social pyramid while those at the base have only just been lifted out of poverty. This also means that the middle class hasn't grown as much as it should have, while small and medium enterprises have failed to transfer the agrarian workforce to manufacturing. Add to this gender inequality which glaringly shows up in the per capita income parameter, and we are looking at a really mixed picture.

This indicates India's economic liberalisation is an unfinished story, and that our socialist political DNA has held us back rather than create a more equal society. Thus, it's high time that the existing development paradigm is challenged and economic reforms undertaken on a war footing. In fact, it's by really opening up the economy and further improving ease of doing business that all sections of society can grow. Socialist interventions like reservations and archaic labour laws only hold India back from realising its true potential.

---

Date: 17-09-18



## दैनिक भास्कर

### लगन के साथ मेहनत करें तो कामयाबी मिलना तय है

#### वरुण बरनवाल

मेरी सफलता के पीछे मेरी मां, रिश्तेदार और दोस्तों का खास योगदान है। इन लोगों का मुझे पर ऐसा भरोसा रहा कि कि पढ़ाई जारी रखने के लिए कोई मेरी फीस भर देता था तो कोई किताबों, फॉर्म का इंतजाम कर देता था। कारण यह था कि मेरा जीवन बेहद गरीबी में बीता। पिताजी की साइकिल सुधारने की दुकान थी। उसी की कमाई से हमारा घर चलता था। इसी आमदनी में से कुछ पैसे मेरी पढ़ाई पर खर्च हो जाते थे। पहले ही आमदनी कम और उस पर पढ़ाई का खर्च। इससे हमारे घर की हालत और खराब हो जाती थी। लेकिन, मेरे भीतर पढ़ाई की बहुत ललक थी। पैसे के संघर्ष के बावजूद मेरा पढ़ाई करने का बहुत मन होता था, लेकिन गरीबी के चलते स्कूल की फीस भरना कठिन था।

हाईस्कूल में एडमिशन के लिए हमारे घर के पास एक ही अच्छा स्कूल था। वहां दाखिले के लिए 10 हजार रुपए डोनेशन लगता था। मैं जानता था कि इतने पैसे मेरी मां के पास नहीं थे। इसलिए मैंने मां से कह दिया कि रहने दो एक साल का गैप ले लेता हूं। अगले साल पैसे जुटाकर दाखिला ले लूंगा। फिर हुआ यूं कि जो डॉक्टर मेरे पिता का इलाज करते थे, वे हमारी दुकान के सामने से गुजरे तो मेरे दाखिले के बारे में पूछ लिया। मैंने अपनी कठनाई बता दी। यह सुनने के बाद उन्होंने अपनी ओर से 10 हजार रुपए देकर कहा- जाओ दाखिला करवा लो। यही वह पल था जिसने मेरे सपनों को हवा दी और नया आत्मविश्वास पैदा किया। अब लगने लगा कि पढ़ाई करके मैं कुछ कर सकता हूं। दाखिला तो डॉक्टर साहब ने दिला दिया, लेकिन इसके बाद टेंशन यह था कि स्कूल की हर महीने की फीस कैसे दूंगा? मैंने स्कूल के प्रिंसिपल से अनुरोध किया तो उन्होंने मेरी फीस माफ कर दी। 2006 में पिताजी का निधन हो गया। उसके बाद तो जैसे मेरे परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा।

पिता बहुत मेहनत करके थोड़ा कुछ कमा लेते थे। 10वीं का परिणाम आया तो जैसे जीवन में नया संचार हो गया। मैंने स्कूल में टॉप किया था लेकिन, आगे की पढ़ाई के लिए पैसे जुटा पाना मेरे लिए बहुत मुश्किल काम था। पांच भाई-बहनों में मैं सबसे बड़ा था, इसलिए पिता के जाने के बाद घर चलाने की पूरी जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ गई। मैंने फैसला कर लिया था कि अब आगे नहीं पढ़ूंगा। साइकिल की दुकान पर ही काम करूंगा, ताकि घर खर्च चल सके। लेकिन किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। मेरे स्कूल में टॉप करने पर मां सबसे ज्यादा खुश हुईं, उन्हें लगा जैसे वे पास हो गई हों। वे उत्साह में भरकर बोलीं, घर के हम सभी लोग कुछ न कुछ काम कर लेंगे। मैं दुकान संभाल लूंगी, तू तो बस आगे की पढ़ाई पर ध्यान दे। मां के ये शब्द सुने तो मुझे नई दिशा मिल गई। मन उत्साह से भर गया। 11वीं-12वीं की पढ़ाई के दो वर्ष मेरे जीवन के सबसे कठिन रहे। कोई भी मौसम हो, मैं सुबह 6 बजे उठकर स्कूल जाता था। फिर दोपहर 2 से रात 10 बजे तक बच्चों को ट्यूशन पढ़ाता था। उसके बाद दुकान पर हिसाब-किताब करता था।

मेरे घर की स्थिति देखते हुए मेरे टीचर ने मेरी दो वर्ष की फीस भर दी। इस तरह मैंने साइंस विषय के साथ 12वीं पास की। आगे इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए पहले साल की फीस 1 लाख रुपए थी। मैं ट्यूशन कर रहा था, घर के सभी

सदस्य कुछ न कुछ करके मेरी पढ़ाई के लिए पैसे जोड़ रहे थे लेकिन, इतना काफी नहीं था। घर का खर्च और कई जरूरतें भी होती थीं। कोई सिर्फ मेरी पढ़ाई के लिए ही सारे लोग काम थोड़ी कर रहे थे। इसलिए जब इंजीनियरिंग में एडमिशन के लिए पैसे की जरूरत पड़ी तो हमारे परिचित सुकुमार भैया, परिवार और कुछ लोगों ने पैसे इकट्ठा करके पुणे के एमआईटी कॉलेज में इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेक्नोलॉजी में मेरा एडमिशन करा दिया। इंजीनियरिंग के पहले टर्म की एग्जाम में टॉप करने पर मुझे आगे की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिल गई लेकिन, उसे हासिल करने में भी मुझे दो साल लगे। बिना अड़चन मेरा कोई काम नहीं होता था।

लेकिन प्रश्न खड़ा हुआ था कि आगे के वर्षों की फीस कहां से आएगी? मैंने कॉलेज टीचर से निवेदन करके कहा कि मैंने प्रथम वर्ष में 86 फीसदी अंक हासिल किए हैं जो कॉलेज में एक रिकॉर्ड है। क्या मेरी फीस माफ हो सकती है? इसके बाद टीचर ने मेरी गुजारिश पर ध्यान दिया और मेरी सिफारिश डीन व डायरेक्टर से कर दी। लेकिन सेकंड ईयर तक मेरी बात उनके द्वारा ठीक से सुनी नहीं गई। इस बीच दोस्त बीच-बीच में पैसे देकर मेरी मदद करते रहे। बदले में मैं भी दोस्तों की पढ़ाई में मदद कर दिया करता था। इस प्रकार आर्थिक परेशानियों से जूझते हुई मैंने 2012 में इंजीनियरिंग पूरी की। मेरी प्लेसमेंट अच्छी हो गई, कई कंपनियों से मुझे नौकरी के ऑफर आने लगे। इधर, मैंने सिविल परीक्षा देने का मन बना रखा था, लेकिन समझ नहीं आ रहा था कि तैयारी कैसे करूं? मैंने जब नौकरियों के ऑफर ठुकरा दिए तो सबसे ज्यादा नाराज मेरी मां हुईं। उन्होंने कई महीनों तक मुझसे बात नहीं की। कारण वही था कि घर की स्थिति इतनी खराब है, ऐसे में मैं नौकरियों के ऑफर ठुकरा रहा था। जब 2013 में यूपीएससी में 32वीं रैंक आई तो सबसे ज्यादा खुश मेरी मां ही थीं। परिणाम सुनकर मुझे तो यकीन नहीं आ रहा था। अगर मेरी मां ने मुझे सहारा नहीं दिया होता तो शायद आज मैं एक साइकिल मैकेनिक ही होता। मेरा सोचना है कि आप लगन से साथ मेहनत करते हैं तो दुनिया की कोई ताकत आपको आगे बढ़ने से रोक नहीं सकती।

## नई दुनिया

Date: 17-09-18

### गंदगी के खिलाफ लंबी लड़ाई

संजय गुप्त, (लेखक दैनिक जागरण के प्रधान संपादक हैं)



आज दुनिया में भारत लोकतंत्र के प्रति समर्पण, युवा आबादी, तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के साथ अन्य अनेक अच्छी बातों के लिए जाना जाता है, लेकिन इसी के साथ उसकी पहचान इस रूप में भी है कि यहां साफ-सफाई के प्रति उतनी जागरूकता नहीं जितनी होनी चाहिए। गांवों और शहरों के सार्वजनिक स्थलों में गंदगी की समस्या को नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री बनते ही गंभीरता के साथ लिया। तमाम चुनौतियों के बाद भी उन्होंने 2 अक्टूबर 2014 को राजपथ से स्वच्छ भारत का नारा दिया। उन्होंने देशवासियों को

महात्मा गांधी के स्वच्छ भारत के सपने की याद दिलाते हुए यह संकल्प लेने के लिए प्रेरित किया कि वे सप्ताह में कम से कम दो घंटे सफाई के लिए समय निकालें।

उनकी अपील का असर हुआ। राज्य सरकारों के साथ स्थानीय निकायों और सामाजिक संगठनों के अतिरिक्त कॉरपोरेट जगत ने भी स्वच्छ भारत अभियान को अपनी-अपनी तरह से गति देनी शुरू की। इसी क्रम में दैनिक जागरण समूह ने भी स्वच्छता के इस अभियान को अपनाया। आज चार साल बाद यह कहा जा सकता है कि देश का शायद ही ऐसा कोई नागरिक हो जो स्वच्छता अभियान से परिचित न हो। साफ-सफाई के प्रति जागरूकता एक बड़ी उपलब्धि इसलिए है, क्योंकि आम तौर पर हमारे देश में लोग सार्वजनिक स्थलों में गंदगी को लेकर बेपरवाह ही दिखते रहे हैं। चूंकि गंदगी के खिलाफ लड़ी जा रही लड़ाई लंबी चलेगी इसलिए प्रधानमंत्री ने एक बार फिर स्वच्छता ही सेवा के तहत देशवासियों को प्रेरित करने का काम किया।

गत दिवस उन्होंने देश के अलग-अलग हिस्सों में वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिये 17 जगहों पर विभिन्न लोगों से संवाद किया। इनमें नामचीन उद्योगपति, अभिनेता से लेकर आध्यात्मिक गुरु, मीडियाकर्मी, छात्र, ग्रामीण आदि शामिल थे। स्वच्छता अभियान के बीते चार साल में कई उल्लेखनीय कार्य हुए हैं। इस दौरान करीब नौ करोड़ शौचालय बनाए गए। 2014 में महज 39 प्रतिशत आबादी शौचालय का इस्तेमाल करती थी। आज यह आंकड़ा 90 प्रतिशत तक पहुंच गया है। अभी तक 20 राज्य खुले में शौच से मुक्त हो चुके हैं। 20 राज्यों की इस उपलब्धि के बावजूद उत्तर और पूर्वी भारत के राज्यों में अभी काफी कुछ किया जाना शेष है। हमें इस पर ध्यान देना होगा कि स्वच्छता एक संस्कार के रूप में हमारी जीवनशैली में कैसे शामिल हो। इसके लिए हमें अपनी आदतों में परिवर्तन लाना होगा। आदत के कारण ही तमाम लोग शौचालय होने के बावजूद खुले में शौच की प्रवृत्ति नहीं छोड़ पा रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार करीब 40 प्रतिशत लोग गंदगी के कारण बीमार पड़ते हैं। इस कारण उन्हें आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ता है। हालांकि स्थिति में बदलाव भी दिख रहा है। डायरिया के मामलों में कमी आई है।

करीब तीन लाख बच्चों की जान बचाने में भी स्वच्छता अभियान की भूमिका मानी जा रही है। दरअसल लोगों को घर ही नहीं, आसपास भी सफाई की चिंता करनी होगी। आखिर क्या वजह है कि औसत नागरिक सड़क पर चलते अथवा ट्रेन-बस में सफर करते समय साफ-सफाई का खयाल नहीं रखता? अपने घर का कूड़ा बाहर फेंक देना शिक्षित समाज की निशानी नहीं। देश के अन्य शहरों को इंदौर से सीख लेनी चाहिए। सफाई के मामले में इंदौर की सफलता लगन और समर्पण की कहानी है। सफाई के मामले में 2016 में यह शहर 25वें स्थान पर था, लेकिन अब सिरमौर है। यहां हर घर और दुकान से कूड़ा इकट्ठा करते समय ही सूखे और गीले कचरे को अलग-अलग करने की व्यवस्था है ताकि उसका खाद और पशु चारे के तौर पर उपयोग किया जा सके। इंदौर की कायापलट इसलिए हो सकी, क्योंकि स्वच्छता अभियान ने लोगों की सोच बदलने का काम किया। अगर यह काम इंदौर या फिर भोपाल में हो सकता है तो फिर देश के दूसरे शहरों में भी तो हो सकता है। अगर दूसरे शहरों में ऐसा नहीं हो पा रहा है तो इसका प्रमुख कारण साफ-सफाई की ठोस योजनाओं का अभाव है। स्वच्छता अभियान के कई आयाम हैं। जरूरी केवल यह नहीं कि सड़कों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों की नियमित सफाई हो।

इसी के साथ सीवर सिस्टम को भी दुरुस्त करने की जरूरत है। सीवर सिस्टम के अभाव या फिर उसमें खराबी के कारण लाखों लोग नारकीय स्थितियों में रहने को विवश हैं। नियोजित बस्तियां तो अपेक्षाकृत साफ-सुथरी दिखती हैं, लेकिन अनियोजित अथवा अवैध बस्तियों में गंदगी का ही आलम नजर आता है। हमारे शहरों की एक बड़ी समस्या कूड़ा

निस्तारण की है। कूड़े के निस्तारण का उपयुक्त तंत्र न होने के कारण जगह-जगह कूड़े के ढेर लगे होते हैं। अंततः इससे ड्रेनेज सिस्टम जाम होता है और बीमारियों का प्रकोप बढ़ता है। बरसात के दिनों में ड्रेनेज जाम होने से सड़कें तालाब बन जाती हैं। कई शहरों का नियोजित विकास नहीं हो पाने से वहां का सीवेज सिस्टम ध्वस्त हो चुका है। अगर सीवर लाइनें हैं भी तो उनके गंदे पानी के शोधन की ठोस व्यवस्था नहीं है। इस मामले में सरकारों को कहीं अधिक ध्यान देना होगा। गंदगी के कारण शहरों की बदहाली का एक बड़ा कारण स्थानीय निकायों की निष्क्रियता है। यह नगर निकायों की जिम्मेदारी है कि वे शहर साफ रखें, लेकिन वे इस जिम्मेदारी का निर्वहन नहीं कर पा रहे हैं। निकायों में भ्रष्टाचार एक बड़ी समस्या है। यह ठीक है कि उन्हें स्वायत्तता मिलनी चाहिए, लेकिन उन्हें अपनी कार्यप्रणाली भी दुरुस्त करनी होगी।

कई निकाय तो अपने कर्मियों को वेतन देने भर की आमदनी भी नहीं जुटा पाते। बहुत कम स्थानीय निकाय ऐसे हैं जिनके पास पर्याप्त संसाधन हैं। बेहतर होगा कि स्थानीय निकायों का नेतृत्व करने वाले यह समझें कि ईमानदार कोशिश की कभी हार नहीं होती। स्वच्छ समाज के निर्माण का हमारा सपना तब साकार होगा जब हम अपनी सोच में बुनियादी बदलाव लाएंगे। हम सभी को अपने आप से यह सवाल करना चाहिए कि क्या देश को गंदगी से मुक्त करना केवल सफाई कर्मियों का काम है? जिन सफाई कर्मियों को इस कारण विशेष महत्व मिलना चाहिए कि वे दूसरों की गंदगी साफ करते हैं उनके साथ अस्पृश्य सरीखा व्यवहार समझ से परे है। यह सबकी जिम्मेदारी है कि सफाईकर्मियों को यह आभास कराएं कि वे एक बड़ा काम कर रहे हैं। अभी हम इसके प्रति सचेत नहीं, इसका पता इससे भी चलता है कि रह-रह कर सीवर साफ करने वाले सफाई कर्मियों की मौत की खबरें आती रहती हैं। इन मौतों का एक बड़ा कारण सफाई कर्मियों की अनदेखी होती है। आखिर उन्हें आवश्यक उपकरण दिए बिना सीवर साफ करने के काम में लगाने का क्या मतलब? अगर स्वच्छ भारत के सपने को साकार करना है तो सफाई कर्मियों को मुख्यधारा में शामिल करने के साथ उन्हें समुचित संसाधन भी उपलब्ध कराने होंगे। एक मीडिया समूह के नाते दैनिक जागरण का यही प्रयास है कि जहां सफाई कर्मियों को समुचित महत्व और मान मिले वहीं हर व्यक्ति इस भावना से लैस हो कि सार्वजनिक स्थलों को साफ-सुथरा रखना खुद उसकी भी जिम्मेदारी है।

*Date: 16-09-18*

Live  
**हिन्दुस्तान**  
.com

## अमीर सांसद, गरीब खिलाड़ी

शशि शेखर, (प्रधान संपादक, हिन्दुस्तान)

सर आप हमें बुलाना चाहते हैं, तो कुछ पैसा लगेगा। हमें कोई कुछ देना-वेता नहीं। खिलाड़ी को पदक जीतने के लिए काफी मेहनत और रुपये की आवश्यकता होती है।' मेरे वरिष्ठ सहयोगी एशियाड खेलों से पदक जीतकर लौटी महिला खिलाड़ी के कोच के मुंह से यह सुनकर हैरान थे। वह 'हिन्दुस्तान' द्वारा आयोजित ऐसे समारोह में उसे बुलाना चाहते थे, जिसमें सिर्फ नामचीन हस्तियां हिस्सा लेती हैं। क्या कोच ने कुछ गलत कहा था? वह जिस खिलाड़ी के कोच हैं, उसके पिता रिक्शा चलाते थे। बमुश्किल 200 रुपये रोज कमा पाते थे। इतने में एक भरे-पूरे परिवार का लालन-पालन भला कैसे



होता? ऊपर से बेटी ने ओलंपियन बनने का सपना पाल लिया। हर ओर अभाव, दारिद्र्य और निराशा का घटाटोप, पर उसके नन्हे कदम डगमगाए नहीं। हर चुनौती से उसकी आंखों में दृढ़ता और मांसपेशियों में कसावट आती गई।

आज स्वर्ण पदक जीतकर वह अपने खेल के शीर्ष पर है। उसे मालूम है कि राज्य सरकार बहुत जल्दी मुझे 10 लाख रुपये प्रदान करेगी। जल्दी ही उसे किसी बड़े कॉरपोरेट घराने अथवा राज्य सरकार की नौकरी भी मिल सकती है, पर यह 'सेलिब्रिटी' बनने के बाद की बात है। लाल जब गुदड़ी के बाहर आ जाए, तो उसकी चकाचौंध सबको आकर्षित करती है, परंतु इस स्थिति तक पहुंचने के लिए जो यातना उसने झेली है, वह शब्दातीत है। आज वह स्टार बन चुकी है। बेहतर भविष्य उसका इंतजार कर रहा है, पर उसके कोच का क्या? अधिक से अधिक उसके हिस्से में कुछ तालियां और स्टार शिष्या के कुछ आदरपूर्ण शब्द आने वाले हैं। सिर्फ आदर से उदरपूर्ति हो जाती, तो क्या बात थी? हमारा गणतंत्र अपने सीने पर खिले गुलाब टांकने का तो आदी है, पर उसे उगाने वाले बागबां के बारे में सोचने का वक्त उसके पास नहीं। यही वजह है कि 125 करोड़ की आबादी वाला यह महान देश एशियाई खेलों में कुल 69 पदक पाकर इतरा रहा है। क्या यह इठलाने का मुद्दा है? इंडोनेशिया और ईरान जैसे अपेक्षाकृत छोटे देश हमसे आगे रहे।

मगर शर्म हम हिन्दुस्तानियों को आसानी से नहीं आती। आती होती, तो दिल्ली का हरीश कुमार सेपक टाकरा में कांस्य पदक जीतकर मजदूरों का टीला में चाय न बेच रहा होता। स्पेशल ओलंपिक में स्वर्ण पदक अर्जित करने वाले राजेश वर्मा राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले में मनरेगा मजदूरों की टोली में खड़े नजर नहीं आते। अधिकांश पदक विजेताओं का यही हाल है। उनके परिवारों पर दरिद्रता का अखंड कब्जा है। किसी का भाई दिहाड़ी मजदूर है, तो अन्य के घर का हर सदस्य हर रोज सिर्फ एक जदोजहद का शिकार होता है कि रात को पेट कैसे भरे? 4x400 मीटर की रिले रेस में दौड़ रही भारत को स्वर्ण पदक दिलाने वाली सरिता गायकवाड़ की कहानी भी ऐसी है। जकार्ता के बाजारों में वह हसरत भरी निगाहों से बाजार और बिकाऊ सामानों को देखती रह गई। वह घरवालों के लिए 'गिफ्ट' खरीदना चाहती थी। उसकी अपनी भी कुछ खाहिशें थीं, पर जब तमन्नाओं का गला घोट रही थी। अब इनमें से हरेक लखपति या करोड़पति होने जा रहा है, लेकिन जैसा मैंने पहले अनुरोध किया कि विजेता बनने के बाद सम्मान देने से जरूरी है कि अपने बच्चों को जीत के लिए तैयार किया जाए। हमारे देश में अभी तक इसकी मुकम्मल व्यवस्था नहीं है। यहां यह जान लेने में भी हर्ज नहीं कि देश के 10 राज्यों में समूची बेशर्मी बरती जाती है।

यहां जन्मे लोगों को पदक जीतने के बाद भी कुछ नहीं दिया जाता। इस दुर्दशा के बावजूद अगर भारत की तरुणाई साधन संपन्न देशों के खिलाड़ियों पर जीत हासिल करती है, तो इसे देश के आम आदमी की विजय यात्रा माना जाना चाहिए। मैंने आम आदमी शब्द का इस्तेमाल जान-बूझकर किया। हमारे देश में साफतौर पर दो वर्ग हैं। एक वे, जो हुक्म चलाते हैं और दूसरा वर्ग, जो चुपचाप इस बेजारी को जीते हैं। आजादी के बाद साल-दर-साल यह त्रासदी मजबूत हुई है। अब राजवंशों की जगह राजनीतिक घरानों ने ले ली है। नतीजा, अरबपति नेताओं के यहां जन्मे बच्चे पहले दिन से ही न केवल अतुल संपत्ति के मालिक होते हैं, बल्कि हुकूमत खुद-ब-खुद दरवाजा खोलकर उनका इंतजार कर रही होती है। राजनीति की बात चली, तो बता दूं कि हमारी लोकसभा के 543 माननीय सदस्यों में से लगभग 450 करोड़पति हैं। राज्यसभा के सांसदों की औसत दौलत 55 करोड़ रुपये से ऊपर बैठती है। कभी विद्वानों, विचारकों अथवा विशारदों के लिए बनाए गए इस सदन में महज पांच सदस्य ऐसे हैं, जिनके पास 10 लाख रुपये से कम की दौलत है। ये करोड़पति 'माननीय' खेल, खिलाड़ियों और प्रशिक्षकों के लिए गए 70 सालों में कोई सार्थक नीति नहीं बना सके हैं। हम अपना यह शिकवा बिसरा सकते हैं, अगर इनमें से हरेक सिर्फ एक खिलाड़ी को गोद ले ले।

यकीन मानिए, हर प्रतियोगिता में हम पदक जीतते दिखाई पड़ेंगे। यहां एक विसंगति की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा। हमारे निर्वाचित प्रतिनिधियों में तमाम क्रिकेट संघों और संबंधित संगठनों पर कब्जे के लिए जी-जान लड़ा देते हैं। कुछ अन्य खेलों पर भी इनकी इनायत बरसती है, मगर एथलीट आमतौर पर उनकी कृपा से वंचित रह जाते हैं। वजह? क्रिकेट जैसा ग्लैमर और पैसा अन्य खेलों के नसीब में नहीं। इसके बावजूद मेरा अनुरोध है कि ग्लैमर और धन के लिए न सही, पर देश की खातिर वे इस पर विचार करें। हमारे खिलाड़ियों का हौसला बड़ा और जरूरतें छोटी हैं। 'माननीयों' की सत्ता, संपदा और साधनों का छोटा सा हिस्सा उनके लिए संजीवनी साबित होगा। वे चाहें, तो तत्काल शुरुआत कर सकते हैं, क्योंकि एशियाड की जंग जीतने वाले नौजवान अब ओलंपिक की तैयारी कर रहे हैं। वे अपने दम-खम का प्रदर्शन कर चुके हैं। अब बारी सत्ता और समाज की है। क्या हमारे 'माननीय' जागेंगे? या, उनकी आंखें सिर्फ संपदा और शक्ति के स्रोतों को ही निहारती रहेंगी?

Date: 16-09-18

राष्ट्रीय  
**सहारा**

## सार्क, बिम्सटेक और भारत

डॉ. दिलीप चौबे



पुणे में चल रहे "बिम्सटेक" के पहले संयुक्त सैनिक युद्धाभ्यास के लिए अंतिम क्षणों में अपनी फौज भेजने से इनकार करके नेपाल ने इस क्षेत्रीय समूह को कमजोर करने की कोशिश की है। इस बात की संभावना ज्यादा है कि काठमांडू ने बीजिंग के दबाव में यह फैसला लिया है। नेपाल के कम्युनिस्ट प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली वैचारिक दृष्टि से चीन के ज्यादा करीबी हैं और वह भारत के बरक्स चीनी कार्ड का इस्तेमाल कर रहे हैं। प्रधानमंत्री मोदी ने बिम्सटेक शिखर सम्मेलन में भाग लेते हुए संयुक्त सैनिक अभ्यास की घोषणा की थी। असलियत में नेपाल के शामिल होने से चीन नाराज हो सकता था और काठमांडू बीजिंग से मधुर रिश्ता चाहता है।

मगर भारत और नेपाल के रिश्तों के बीच जो रुकावटें पैदा हो रही हैं, उससे बिम्सटेक जैसे क्षेत्रीय समूह का भविष्य प्रभावित हो सकता है। पाकिस्तान का सीमा पार आतंकवाद को बढ़ावा देने की नीति के कारण दक्षिण एशियाई सहयोग संगठन (सार्क) धीरे-धीरे अप्रासंगिक होता जा रहा है। हालांकि, पाकिस्तान के नवनिर्मित प्रधानमंत्री इमरान खान सार्क शिखर सम्मेलन को दोबारा शुरू कराने की इच्छा जाहिर कर चुके हैं। इस्लामाबाद सार्क सम्मेलन की मेजबानी के लिए अन्य सदस्य देशों का समर्थन जुटा रहा है। श्रीलंका, मालदीव और नेपाल ने अपना समर्थन दिया है। लेकिन उम्मीद है कि भारत अपने रुख पर डटा रहेगा, जब तक पाकिस्तान का आतंकवाद के प्रति अपना रुख बदलता नहीं है। दो हजार सोलह में सार्क का 19वां सम्मेलन पाकिस्तान में होना था, लेकिन उरी में पाक समर्थित आतंकवादी संगठनों के हमले के

बाद भारत ने इसका बहिष्कार कर दिया था। इसके बाद से अभी तक इसकी कोई बैठक नहीं हो पाई है। भारत के लिए सार्क और बिम्सटेक दोनों की अहमियत है। लेकिन बिम्सटेक समूह भारत की मौजूदा विदेश नीति के लिहाज से विशेष कूटनीतिक महत्त्व रखता है; क्योंकि इसमें शामिल म्यांमार और थाईलैंड नई दिल्ली की “एक्ट-ईस्ट नीति” का अहम हिस्सा है।

इस क्षेत्रीय संगठन की अहमियत इसलिए भी अधिक है कि यह दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया को जोड़ने के लिए पुल का काम करता है। सार्क सम्मेलन के स्थगित होने के कारण भारत बिम्सटेक को मजबूत करने की दिशा में अग्रसर है। परंतु नेपाल के रुख से लगता है कि वह सार्क को ज्यादा अहमियत देना चाहता है। दो हजार सोलह में जब भारत ने पाकिस्तान में होने वाले सार्क सम्मेलन का बहिष्कार किया था, तब नेपाल पाकिस्तान के साथ सम्मेलन के पक्ष में खड़ा था। इधर नेपाल में सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता और पूर्व प्रधानमंत्री प्रचंड दहल ने भी सार्क सम्मेलन को शुरू करने की इच्छा व्यक्त की है। नेपाल की यह सद्इच्छा सार्क को पुनर्जीवित करने के लिए है या पाकिस्तान को इस क्षेत्रीय संगठन में पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए कहना मुश्किल है। हालांकि नई दिल्ली को ऐसी राजनीतिक जमीन तैयार करनी चाहिए कि दोनों क्षेत्रीय समूहों की प्रासंगिकता कायम रहे। निसंदेह भारत उभरता हुआ महाशक्ति है। इसलिए इन दोनों क्षेत्रीय समूहों के सदस्य देशों के बीच आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाना उसकी महती जिम्मेदारी है। साथ ही दक्षिण एशिया का नेतृत्व भारत के ही हाथों में रहेगा।

## Performing moderately

*A new state of democracy report records a significant dip in India's record on civil liberties, personal integrity and security, freedom of association, media integrity, gender equality*

**SY Quraishi**

Today, the world celebrates the 11th International Day of Democracy in pursuance of a UN resolution. This is an appropriate occasion to have a look at the state of democracy in South Asia, especially India. The world saw a huge wave of democratisation after World War II. The newly-liberated states in Latin America, Africa and Asia adopted democratic forms of government after centuries of colonial subjugation. Today more people live under various forms of democracy than ever before. More than 120 of the 192 countries in the world have some form of democracy — only 11 parliamentary democracies existed in 1941. This indicates the appeal of democratic ideas and systems.

South Asia is home to 3 per cent of the world's area and 21 per cent of the world's population. It's significant that 50 per cent of the world's population living under some form of democratic rule resides in this region. Despite the democratic upsurge, there are significant challenges like poverty, inequality, gender injustice, nepotism and corruption. Elected despots and authoritarian leaders are weakening



democracies across the world. Political experts have argued that democratic values are on the decline, especially in the West. The International Institute for Democracy and Electoral Assistance (IDEA), an inter-country organisation, tried to evaluate the state of democracy in the world in the light of such worrying claims.

The Global State of Democracy Index (GSoD) looks at the trends in democratisation from 1975 to 2017. With the help of a set of 98 indicators, IDEA aims to study the factors which threaten democracy throughout the world and those that make it strong and resilient. The study covers a variety of important indicators such as representative government, fundamental rights, checks on the government, impartial administration and participatory engagement. These have many sub indicators for an in depth indices-based analysis. When it comes to representative government, India and Sri Lanka have maintained relatively high scores.

Afghanistan, Bangladesh, Nepal and Pakistan have had periods of non-elected regimes. The general trend in South Asia in this respect has, however, been positive. With respect to ensuring fundamental rights, the region's score matches that of Asia Pacific but it is slightly below the global average. At the country level, Afghanistan and Nepal have seen the most improvement. Sri Lanka and Pakistan saw a slight decline in the 1970s and 1980s. India's score has been stable since the late 1970s. However, a decline has been observed since 2015. South Asia shows a steady improvement on the yardstick that measures gender equality with Nepal standing out. India's score was better than the world average till 2003 but there has been a dip in the country's performance on the gender equality yardstick since then. When it comes to checks on government, South Asia has shown a steady increase from 1975 to 1994. Afghanistan, Nepal and Pakistan have shown the most improvement. Bangladesh, India and Sri Lanka have remained relatively stable with scores in line with the global average.

In the yardstick on impartial administration, South Asia follows both the regional and global trends with no significant change, except in Nepal, which has seen a significant improvement. However, the "absence of corruption" sub-indice within the "impartial administration" category shows a worrying tendency in South Asia. The region has the lowest scores in the world despite a slight improvement between 2012 and 2015. A robust civil society is essential for deliberative decision making. Civil society participation has increased in India by leaps and bounds between 1978 and 2012 after which it declined drastically to fall below the average of Asia Pacific and that of the World. In 2017, it was the lowest since 1975. In 2017, the gap between the Indian score and the world average in the yardstick that measures "personal integrity and security" was the widest since 1977.

This is worrying. In the past 10 years, South Asia's scores for electoral participation are in line with the global average but slightly below the Asia Pacific average. Recently, there has been a decrease in voter participation in Bangladesh but a slight increase in India and Sri Lanka. One of the major challenges to democracy is people losing faith in it. There are many reasons for such disillusionment, including corruption, nepotism and unemployment. This often leads to people disengaging with key public policy issues which, in turn, makes those in power less accountable. Other factors, in contrast, contribute to the popularity of democracies. These include transparency in political processes, accountability of elected representatives, basic freedoms for all citizens, equal rights for women and minorities and high rates of voter participation.

The GSoD report analyses India's performance on all the above-mentioned indicators and shows that the country has done moderately well. On yardsticks such as elected government, effective parliament and impartial administration, the country's scores hover around the world average but in the last decade,

there has been a significant dip in the country's record on civil liberties, personal integrity and security, freedom of association, media integrity, gender equality and basic welfare. In fact, India's performance on the yardstick to measure media integrity was better than the global and South Asian average between 1994 and 2012. However, the country's score has fallen below the global and Asia-Pacific average in 2017. Given that a free and fair media is crucial to a meaningful democracy, this is a worrying tendency. The Election Commission has played an important role in conducting free and fair elections in the country. The Commission's Systematic Voters Education for Electoral Participation Programme role has been crucial in this respect.

An independent judiciary is another reason for the resilience of democracy in India. The apex court has given judgments that keep a check on the government and ensure a transparent and accountable system. Democracy does not merely mean voting rights for people, it means empowering people by granting them equality. It also means the creation of mechanisms to resolve differences through dialogue and with mutual respect and understanding. India does have the highest rating among South Asian democracies. But its performances on several yardsticks makes it a flawed democracy. If we want the largest democracy to count among the world's greatest, there must be serious introspection among all stakeholders.

---